

त्रयोदशोऽध्यायः

सुरथ और वैश्यको देवीका वरदान

ध्यानम्

ॐ बालार्कमण्डलाभासां चतुर्बाहुं त्रिलोचनाम् ।
पाशाङ्कुशवराभीतीर्धारयन्तीं शिवां भजे ॥

‘ॐ’ ऋषिरुवाच ॥ १ ॥

एतत्ते कथितं भूप देवीमाहात्म्यमुत्तमम् ।
एवंप्रभावा सा देवी ययेदं धार्यते जगत् ॥ २ ॥
विद्या तथैव क्रियते भगवद्विष्णुमायया ।
तया त्वमेष वैश्यश्च तथैवान्ये विवेकिनः ॥ ३ ॥
मोह्यन्ते मोहिताश्चैव मोहमेष्यन्ति चापरे ।
तामुपैहि महाराज शरणं परमेश्वरीम् ॥ ४ ॥
आराधिता सैव नृणां भोगस्वर्गापवर्गदा ॥ ५ ॥

जो उदयकालके सूर्यमण्डलकी-सी कान्ति धारण करनेवाली हैं, जिनके चार भुजाएँ और तीन नेत्र हैं तथा जो अपने हाथोंमें पाश, अंकुश, वर एवं अभयकी मुद्रा धारण किये रहती हैं, उन शिवादेवीका मैं ध्यान करता हूँ।

ऋषि कहते हैं—॥ १ ॥ राजन्! इस प्रकार मैंने तुमसे देवीके उत्तम माहात्म्यका वर्णन किया। जो इस जगत्को धारण करती हैं, उन देवीका ऐसा ही प्रभाव है ॥ २ ॥ वे ही विद्या (ज्ञान) उत्पन्न करती हैं। भगवान् विष्णुकी मायास्वरूपा उन भगवतीके द्वारा ही तुम, ये वैश्य तथा अन्यान्य विवेकी जन मोहित होते हैं, मोहित हुए हैं तथा आगे भी मोहित होंगे। महाराज! तुम उन्हीं परमेश्वरीकी शरणमें जाओ ॥ ३-४ ॥ आराधना करनेपर वे ही मनुष्योंको भोग, स्वर्ग तथा मोक्ष प्रदान करती हैं ॥ ५ ॥

मार्कण्डेय उवाच ॥ ६ ॥

इति तस्य वचः श्रुत्वा सुरथः स नराधिपः ॥ ७ ॥
 प्रणिपत्य महाभागं तमृषिं शंसितव्रतम् ।
 निर्विण्णोऽतिममत्वेन राज्यापहरणेन च ॥ ८ ॥
 जगाम सद्वस्तपसे स च वैश्यो महामुने ।
 संदर्शनार्थमम्बाया नदीपुलिनसंस्थितः ॥ ९ ॥
 स च वैश्यस्तपस्तेपे देवीसूक्तं परं जपन् ।
 तौ तस्मिन् पुलिने देव्याः कृत्वा मूर्तिं महीमयीम् ॥ १० ॥
 अर्हणां चक्रतुस्तस्याः पुष्पधूपाग्नितर्पणैः ।
 निराहारौ यताहारौ तन्मनस्कौ समाहितौ ॥ ११ ॥
 ददतुस्तौ बलिं चैव निजगात्रासृगुक्षितम् ।
 एवं समाराधयतोस्त्रिभिर्वर्षैर्यतात्मनोः ॥ १२ ॥
 परितुष्टा जगद्धात्री प्रत्यक्षं प्राह चण्डिका ॥ १३ ॥

मार्कण्डेयजी कहते हैं— ॥ ६ ॥ क्रौष्टुकिजी! मेधामुनिके ये वचन सुनकर राजा सुरथने उत्तम व्रतका पालन करनेवाले उन महाभाग महर्षिको प्रणाम किया। वे अत्यन्त ममता और राज्यापहरणसे बहुत खिन्न हो चुके थे ॥ ७-८ ॥ महामुने! इसलिये विरक्त होकर वे राजा तथा वैश्य तत्काल तपस्याको चले गये और वे जगदम्बाके दर्शनके लिये नदीके तटपर रहकर तपस्या करने लगे ॥ ९ ॥ वे वैश्य उत्तम देवीसूक्तका जप करते हुए तपस्यामें प्रवृत्त हुए। वे दोनों नदीके तटपर देवीकी मिट्टीकी मूर्ति बनाकर पुष्प, धूप और हवन आदिके द्वारा उनकी आराधना करने लगे। उन्होंने पहले तो आहारको धीरे-धीरे कम किया; फिर बिलकुल निराहार रहकर देवीमें ही मन लगाये एकाग्रतापूर्वक उनका चिन्तन आरम्भ किया ॥ १०-११ ॥ वे दोनों अपने शरीरके रक्तसे प्रोक्षित बलि देते हुए लगातार तीन वर्षतक संयमपूर्वक आराधना करते रहे ॥ १२ ॥ इसपर प्रसन्न होकर जगत्को धारण करनेवाली चण्डिकादेवीने प्रत्यक्ष दर्शन देकर कहा ॥ १३ ॥

देव्युवाच ॥ १४ ॥

यत्प्रार्थ्यते त्वया भूप त्वया च कुलनन्दन ।
मत्तस्तत्प्राप्यतां सर्वं परितुष्टा ददामि तत् ॥ १५ ॥

मार्कण्डेय उवाच ॥ १६ ॥

ततो वव्रे नृपो राज्यमविभ्रंश्यन्यजन्मनि ।
अत्रैव च निजं राज्यं हतशत्रुबलं बलात् ॥ १७ ॥
सोऽपि वैश्यस्ततो ज्ञानं वव्रे निर्विण्णमानसः ।
ममेत्यहमिति प्राज्ञः सङ्गविच्युतिकारकम् ॥ १८ ॥

देव्युवाच ॥ १९ ॥

स्वल्पैरहोभिर्नृपते स्वं राज्यं प्राप्स्यते भवान् ॥ २० ॥
हत्वा रिपूनस्खलितं तव तत्र भविष्यति ॥ २१ ॥
मृतश्च भूयः सम्प्राप्य जन्म देवाद्विवस्वतः ॥ २२ ॥
सावर्णिको नाम * मनुर्भवान् भुवि भविष्यति ॥ २३ ॥

देवी बोलीं— ॥ १४ ॥ राजन्! तथा अपने कुलको आनन्दित करनेवाले वैश्य! तुमलोग जिस वस्तुकी अभिलाषा रखते हो, वह मुझसे माँगो। मैं संतुष्ट हूँ, अतः तुम्हें वह सब कुछ दूँगी ॥ १५ ॥

मार्कण्डेयजी कहते हैं— ॥ १६ ॥ तब राजाने दूसरे जन्ममें नष्ट न होनेवाला राज्य माँगा तथा इस जन्ममें भी शत्रुओंकी सेनाको बलपूर्वक नष्ट करके पुनः अपना राज्य प्राप्त कर लेनेका वरदान माँगा ॥ १७ ॥ वैश्यका चित्त संसारकी ओरसे खिन्न एवं विरक्त हो चुका था और वे बड़े बुद्धिमान् थे; अतः उस समय उन्होंने तो ममता और अहंतारूप आसक्तिका नाश करनेवाला ज्ञान माँगा ॥ १८ ॥

देवी बोलीं— ॥ १९ ॥ राजन्! तुम थोड़े ही दिनोंमें शत्रुओंको मारकर अपना राज्य प्राप्त कर लोगे। अब वहाँ तुम्हारा राज्य स्थिर रहेगा ॥ २०-२१ ॥ फिर मृत्युके पश्चात् तुम भगवान् विवस्वान् (सूर्य)-के अंशसे जन्म लेकर इस पृथ्वीपर सावर्णिक मनुके नामसे विख्यात होओगे ॥ २२-२३ ॥

वैश्यवर्य त्वया यश्च वरोऽस्मत्तोऽभिवाञ्छितः ॥ २४ ॥

तं प्रयच्छामि संसिद्धयै तव ज्ञानं भविष्यति ॥ २५ ॥

मार्कण्डेय उवाच ॥ २६ ॥

इति दत्त्वा तयोर्देवी यथाभिलषितं वरम् ॥ २७ ॥

बभूवान्तर्हिता सद्यो भक्त्या ताभ्यामभिष्टुता ।

एवं देव्या वरं लब्ध्वा सुरथः क्षत्रियर्षभः ॥ २८ ॥

सूर्याज्जन्म समासाद्य सावर्णिर्भविता मनुः ॥ २९ ॥

एवं देव्या वरं लब्ध्वा सुरथः क्षत्रियर्षभः ।

सूर्याज्जन्म समासाद्य सावर्णिर्भविता मनुः ॥ क्लीं ॐ ॥

इति श्रीमार्कण्डेयपुराणे सावर्णिके मन्वन्तरे देवीमाहात्म्ये सुरथ-

वैश्ययोर्वरप्रदानं नाम त्रयोदशोऽध्यायः ॥ १३ ॥

उवाच ६, अर्धश्लोकाः ११, श्लोकाः १२, एवम् २९, एवमादितः

७०० ॥ समस्ता उवाचमन्त्राः ५७, अर्धश्लोकाः ४२, श्लोकाः ५३५,

अवदानानि ॥ ६६ ॥

वैश्यवर्य! तुमने भी जिस वरको मुझसे प्राप्त करनेकी इच्छा की है, उसे देती हूँ। तुम्हें मोक्षके लिये ज्ञान प्राप्त होगा ॥ २४-२५ ॥

मार्कण्डेयजी कहते हैं—॥ २६ ॥ इस प्रकार उन दोनोंको मनोवांछित वरदान देकर तथा उनके द्वारा भक्तिपूर्वक अपनी स्तुति सुनकर देवी अम्बिका तत्काल अन्तर्धान हो गयीं। इस तरह देवीसे वरदान पाकर क्षत्रियोंमें श्रेष्ठ सुरथ सूर्यसे जन्म ले सावर्णि नामक मनु होंगे ॥ २७—२९ ॥

इस प्रकार श्रीमार्कण्डेयपुराणमें सावर्णिक मन्वन्तरकी कथाके अन्तर्गत

देवीमाहात्म्यमें 'सुरथ और वैश्यको वरदान' नामक

तेरहवाँ अध्याय पूरा हुआ ॥ १३ ॥